INTERNATIONAL RESEARCH JOURNAL OF
HUMANITIES AND INTERDISCIPLINARY STUDIES
(Peer-reviewed, Refereed, Indexed & Open Access Journal)
DOI : 03.2021-11278686 ISSN : 2582-8568 IMPACT FACTOR : 8.428 (SJIF 2026)

पूर्व मध्यकालीन भारतीय सामाजिक परिवेश में अस्पृश्यता: एक विश्लेषण

(Untouchability in the Social Milieu of Early Medieval India: An Analysis)

भारती

शोधार्थी,
इतिहास विभाग,
चौधरी बंसीलाल विश्वविद्यालय,
भिवानी (हरियाणा, भारत)

DOI No. 03.2021-11278686 **DOI Link ::** https://doi-ds.org/doilink/08.2026-25455435/IRJHIS2608005

शोध सार:

अस्पृश्यता की उत्पत्ति और विकास को समझने के लिए भारतीय समाज की वर्ण एवं जाति-आधारित संरचना का अध्ययन आवश्यक है। पूर्व मध्यकाल में सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा राजनीतिक परिवर्तनों के परिणामस्वरूप वर्ण व्यवस्था अधिक जटिल हुई और अनेक पेशागत समूह क्रमशः अछूत अथवा अन्त्यज श्रेणी में सम्मिलित किए गए। इनमें चाण्डाल प्रमुख थे, जिन्हें सामाजिक रूप से अस्पृश्य माना जाता था। शुद्धता-अशुद्धता की अवधारणा के कारण अस्पृश्य जातियों पर अनेक सामाजिक एवं धार्मिक प्रतिबंध आरोपित किए गए। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य पूर्व मध्यकालीन भारतीय सामाजिक परिवेश में अस्पृश्यता के स्वरूप, उसके विकास तथा प्रमुख अस्पृश्य जातियों की सामाजिक स्थिति का ऐतिहासिक विश्लेषण करना है। इस अध्ययन में वैदिक साहित्य, धर्मसूत्रों, स्मृतियों, बौद्ध एवं जैन साहित्य, विदेशी यात्रियों के विवरण तथा आधुनिक इतिहासकारों के मतों का विश्लेषण किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन से स्पष्ट होता है कि पूर्व मध्यकाल तक अस्पृश्यता केवल धार्मिक अवधारणा न रहकर सामाजिक, आर्थिक एवं पेशागत आधारों पर विकसित एक संस्थागत व्यवस्था बन चुकी थी, जिसने सामाजिक असमानता को स्थायित्व प्रदान किया।

मुख्य शब्द: *अस्पृश्यता, अंत्यज, शूद्र, अछूत, जातियाँ, अनुलोम-प्रतिलोम, अलबरूनी, चांडाल, धोबी, चर्मकार, हाड़ी*

भूमिका:

भारतीय समाज की वर्ण-व्यवस्था के अनुसार चार वर्णों की उत्पत्ति विराट पुरुष के विभिन्न अंगों से मानी गई, जिसके आधार पर समाज में श्रेणीबद्ध सामाजिक व्यवस्था स्थापित हुई। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र क्रमशः ज्ञान, शासन, आर्थिक गतिविधियों तथा सेवा-कार्य से संबद्ध थे, जिनमें शूद्रों को निम्न स्थान प्रदान किया गया[1] इसी सामाजिक संरचना के भीतर कालांतर में अस्पृश्यता की अवधारणा विकसित हुई, जिसने कुछ समुदायों को सामाजिक एवं धार्मिक अधिकारों से वंचित कर दिया। महाभारत में चारों वर्णों को प्रतीकात्मक रूप से रंगों के माध्यम से निरूपित किया गया है, जहाँ ब्राह्मणों को श्वेत, क्षत्रियों को लाल, वैश्यों को पीला तथा शूद्रों को काला रंग प्रदान किया गया है। जिन्हें सत्त्व, रज और तम गुणों से संबद्ध कर सामाजिक पदानुक्रम का वैचारिक आधार प्रस्तुत

किया गया है।[2]

पतंजलि ने शूद्रों को 'निरवसित' और 'अनिरवसित' दो वर्गों में विभाजित किया है। 'निरवसित' शूद्र सामाजिक रूप से अस्पृश्य माने जाते थे, जबकि 'अनिरवसित' शूद्र स्पृश्य थे। 'निरवसित' वर्ग में चाण्डाल तथा मृतप जैसे समुदाय सम्मिलित थे।[3] इसी प्रकार, हेमचन्द्र ने शूद्रों के 'पात्र्य' और 'अपात्र्य' दो वर्गों का उल्लेख किया है, जिनमें 'अपात्र्य' को अस्पृश्य माना गया है।[4]

उपनिषदों और महाभारत से स्पष्ट है कि चातुर्वर्ण व्यवस्था के अतिरिक्त अनेक जातियाँ विद्यमान थीं, जिनकी उत्पत्ति वर्ण-मिश्रण एवं अंतर्जातीय विवाहों से मानी गई।[5] अंतर्जातीय वैवाहिक संबंधों से सामाजिक विविधता एवं जातियों की संख्या में वृद्धि हुई, जिससे समाज की जातिगत संरचना अधिक जटिल हो गई।

उद्देश्य:

- पूर्व मध्यकालीन भारत में अस्पृश्यता के विकास का अध्ययन करना।
- प्रमुख अस्पृश्य जातियों की सामाजिक स्थिति का विश्लेषण करना।
- अस्पृश्यता के सामाजिक एवं पेशागत आधारों का मूल्यांकन करना।

परिकल्पना:

यह शोधपत्र इस परिकल्पना का परीक्षण करता है कि पूर्व मध्यकाल में अस्पृश्यता का विकास सामाजिक, धार्मिक एवं पेशागत कारकों के संयुक्त प्रभाव से हुआ, जिसके परिणामस्वरूप यह एक संगठित सामाजिक संस्था के रूप में स्थापित हुई।

शोध पद्धति:

यह शोधपत्र ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है। अध्ययन में वैदिक साहित्य, धर्मसूत्र, स्मृतियाँ, बौद्ध एवं जैन ग्रंथ, विदेशी यात्रियों के विवरण तथा आधुनिक इतिहासकारों के ग्रंथों का आलोचनात्मक एवं तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है।

अस्पृश्यता:

'अछूत' शब्द उन व्यक्तियों के लिए प्रयुक्त होता है, जिन्हें सामाजिक रूप से स्पर्श के अयोग्य माना गया। भारतीय वर्ण-व्यवस्था में अन्त्यज अथवा अस्पृश्य वर्गों को चातुर्वर्ण व्यवस्था से बाहर रखकर सामाजिक बहिष्कार का सामना करना पड़ा, जिसके कारण उन्हें 'पंचम वर्ण' के रूप में भी अभिहित किया गया। इन पर स्पर्श, सहभोजन, सहवास, मंदिर प्रवेश तथा सार्वजनिक जल स्रोतों के उपयोग जैसे अनेक प्रतिबंध लगाए गए। ये प्रतिबंध केवल धार्मिक शुद्धता-अशुद्धता की अवधारणा तक सीमित नहीं थे, बल्कि सामाजिक दूरी बनाए रखने, उच्च वर्णों के वर्चस्व को सुरक्षित रखने तथा संसाधनों से वंचित करने के साधन भी थे। इस प्रकार, अस्पृश्यता सामाजिक नियंत्रण, बहिष्कार और असमानता को संस्थागत रूप प्रदान करने वाली व्यवस्था थी।

अस्पृश्यता पर विद्वानों के विचार :

अस्पृश्यता की उत्पत्ति के संबंध में विद्वानों ने विभिन्न मत प्रस्तुत किए हैं। डॉ. घुर्ये के अनुसार इसकी जड़ें आर्यों द्वारा स्थानीय निवासियों पर स्थापित प्रभुत्व में निहित हैं,[6] जबकि डॉ. मजूमदार ने इसे प्रजातीय एवं सांस्कृतिक भिन्नताओं तथा शुद्धता-अशुद्धता

की अवधारणा से जोड़ा है।[7] हट्टन के अनुसार तथाकथित गंदे एवं घृणित पेशों से जुड़े लोगों के प्रति सामाजिक दूरी ने अस्पृश्यता को जन्म दिया। इसके अतिरिक्त, निरूपण विद्यालंकार ने इसके विकास में धार्मिक एवं मनोवैज्ञानिक कारकों की भूमिका स्वीकार की है,[8] जबकि जोहान्स किक ने इसे विकसित कृषक समाज और जनजातीय समुदायों के बीच सामाजिक दूरी का परिणाम माना है।[9]

यद्यपि इन विद्वानों ने अस्पृश्यता की उत्पत्ति और विकास के विभिन्न पक्षों की व्याख्या की है, तथापि पूर्व मध्यकालीन भारतीय समाज में इसके क्रमिक विकास, पेशागत जातियों के अन्त्यज वर्ग में समावेशन तथा सामाजिक संरचना पर इसके प्रभाव का समग्र ऐतिहासिक अध्ययन अपेक्षाकृत सीमित है। प्रस्तुत शोध इसी शोध-अंतर की पूर्ति का प्रयास करता है।

अस्पृश्यता का ऐतिहासिक सर्वेक्षण:

अस्पृश्यता का प्रारंभिक उल्लेख वैदिक साहित्य में मिलता है, किंतु उस समय यह पूर्ण विकसित सामाजिक संस्था नहीं थी। वैदिक ग्रंथों में 'अन्त्यज' या 'अस्पृश्य' शब्द नहीं मिलते, यद्यपि चर्मकार, नाई, चाण्डाल एवं पौल्कस जैसे पेशागत समूहों का उल्लेख मिलता है, जिन्हें उत्तरवर्ती काल में अस्पृश्य माना गया। छान्दोग्य उपनिषद में भी 'चाण्डाल' का उल्लेख निम्न जन्म के संदर्भ में किया गया है।[10] शूद्रों के विषय में जानकारी देने वाले मुख्य प्रतिपादक पतंजलि, पाणिनि, गौतम और बौधायन हैं, जो सुदास, श्वापच, चंण्डाल, रथकार, कुम्भकार, अयस्कर, राजक, नेपिता, चर्मकार, घिवारा, अभिरा आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं।[11]

प्रारंभिक सूत्र साहित्य से संकेत मिलता है कि उस समय अस्पृश्यता पूर्ण विकसित संस्था नहीं थी, बल्कि मुख्यतः 'चाण्डाल' समुदाय तक सीमित थी। जातक कथाएँ 'अन्त्यज' वर्ग के अस्तित्व तथा चाण्डालों की सामाजिक पदानुक्रम में निम्नतम स्थिति की पुष्टि करती हैं। धर्मसूत्रों में भी चाण्डालों की स्थिति अत्यंत हीन बताई गई है। गौतम ने उन्हें शूद्र पुरुष और ब्राह्मण स्त्री की प्रतिलोम संतान माना है।[12] आपस्तम्ब के अनुसार चाण्डाल का स्पर्श, वार्तालाप तथा दर्शन तक निषिद्ध था और उसके लिए प्रायश्चित्त का विधान किया गया था।[13] साथ ही, चाण्डाल के ग्राम में प्रवेश करने पर वेदाध्ययन रोकने का निर्देश भी मिलता है, जो सामाजिक बहिष्कार की तीव्रता को दर्शाता है।[14] पाली ग्रंथों में चाण्डाल, निषाद, वेण, रथकार तथा पुक्कुस को समाज की निम्नतम जातियों में गिना गया है।

मातंग जातक अस्पृश्यता की सामाजिक स्वीकृति का प्रमाण प्रस्तुत करता है। इसके अनुसार, चाण्डाल द्वारा स्पर्श किए गए भोजन के सेवन पर ब्राह्मणों का जाति-बहिष्कार किया जाता था, जो शुद्धता-अशुद्धता की कठोर धारणा को दर्शाता है।[15] जैन ग्रंथों में मातंग, पाण, डोंब, मोरत्तिय, किणिक, सोवाग (श्वपच) तथा वरूड़ जैसी अस्पृश्य जातियों का उल्लेख मिलता है, जिनमें मातंगों को विशेष रूप से 'जाति का कलंक' कहा गया है। कौटिल्य ने वर्णसंकर जातियों को 'शूद्रसधर्मा' कहा, जबकि चाण्डालों की स्थिति को अत्यंत हीन माना।[16] मौर्योत्तर काल में अस्पृश्यता का दायरा और कठोर होता गया तथा अनेक नई जातियाँ इसमें सम्मिलित हुईं। गुप्त एवं गुप्तोत्तर काल में पुराणों के प्रभाव से सामाजिक नियम अधिक कठोर हुए, जिससे अस्पृश्यता को संस्थागत आधार मिला और उसका व्यापक प्रसार हुआ।

पूर्व मध्यकाल में शूद्रों एवं अन्त्यज वर्ग की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। आर. एस. शर्मा के अनुसार, ब्राह्मणीकरण की प्रक्रिया ने अछूत जातियों के विस्तार को प्रोत्साहित किया। ये समुदाय सामान्यतः ग्राम एवं नगर की सीमाओं के बाहर निवास करते

थे। इससे स्पष्ट है कि पूर्व मध्यकाल तक अस्पृश्यता सामाजिक, पेशागत तथा शुद्धता-अशुद्धता की अवधारणा पर आधारित एक सुदृढ़ सामाजिक व्यवस्था बन चुकी थी।

मुख्य अस्पृश्य जातियाँ:

धर्मशास्त्रीय एवं ऐतिहासिक स्रोतों में अनेक अस्पृश्य जातियों का उल्लेख मिलता है। अत्रि एवं यम ने रजक, चक्रकार, नट, बुरुड, कैवर्त, मेद तथा मिल्ल जैसी जातियों को अन्त्यज वर्ग में रखा है।[17] अलबेरूनी के अनुसार शूद्रों के बाद ‘अन्त्यज’ वर्ग था, जो विभिन्न पेशागत समूहों से बना था। उसने इन्हें उच्च और निम्न दो वर्गों में विभाजित किया। उच्च वर्ग में धोबी, मोची, मदारी, टोकरी एवं ढाल बनाने वाले, माझी, मछुआरे, शिकारी तथा बुनकर थे, जबकि निम्न वर्ग में हाड़ी, डोम, चाण्डाल तथा बधतौ जैसी जातियाँ थीं, जिन्हें अशुद्ध कार्यों से जोड़ा गया और समाज में कोई सम्मानजनक स्थान प्राप्त नहीं था।[18] यह विभाजन दर्शाता है कि पूर्व मध्यकालीन समाज में अस्पृश्यता सामाजिक बहिष्कार के साथ-साथ पेशागत आधार पर निर्मित एक स्तरीकृत व्यवस्था के रूप में विकसित हो चुकी थी।

चाण्डाल:

चाण्डालों को भारतीय समाज में अत्यंत निम्न श्रेणी का माना गया है और विभिन्न धर्मशास्त्रीय तथा साहित्यिक स्रोतों के अनुसार उनकी उत्पत्ति शूद्र पुरुष और ब्राह्मण स्त्री के प्रतिलोम विवाह से हुई मानी गई है।[19] मनुस्मृति के अनुसार उन्हें ग्राम-सीमा के बाहर निवास करना पड़ता था तथा उनके जीवन पर अनेक सामाजिक और धार्मिक प्रतिबंध लगाए गए थे। राज्य की आज्ञा से वे जल्लाद जैसे कार्य करते थे और सामाजिक बहिष्कार का जीवन व्यतीत करते थे। याज्ञवल्क्य ने भी उन्हें धार्मिक अधिकारों से वंचित रखा है।[20] इन विवरणों से स्पष्ट होता है कि चाण्डालों की सामाजिक स्थिति अत्यंत निम्न एवं बहिष्कृत थी। याज्ञवल्क्य ने भी चाण्डालों को धार्मिक अधिकारों से वंचित रखते हुए उन्हें समाज के मुख्यधारा से बाहर रखने का समर्थन किया है।[21]

समकालीन विदेशी एवं संस्कृत साहित्य चाण्डालों की बहिष्कृत सामाजिक स्थिति की पुष्टि करता है। ह्वेनत्सांग के अनुसार वे नगर के बाहर निवास करते थे तथा मांस-विक्रय, जल्लाद और सफाई जैसे कार्यों से जुड़े थे।[22] बाणभट्ट ने यह उल्लेख किया है कि वे अपने आगमन की सूचना देने के लिए बाँस की छड़ी बजाते थे।[23] हेमचन्द्र ने भी कहा है कि चाण्डाल चलते समय ध्वनि उत्पन्न करते थे।[24] इन साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि चाण्डालों का बहिष्कार केवल धार्मिक नहीं, बल्कि सामाजिक व्यवस्था का संगठित अंग था।

डोम:

डोम भारतीय समाज की प्राचीन अस्पृश्य जातियों में से एक थी। इब्न खुर्दाज्बा ने इसका उल्लेख ‘जम्ब’ नाम से करते हुए इनके प्रमुख व्यवसाय के रूप में गान एवं वादन का वर्णन किया है।[25] इसी प्रकार, अलबेरूनी ने भी डोमों को बाँसुरी वादन तथा गायन से संबद्ध बताया है।[26] इससे स्पष्ट होता है कि सामाजिक रूप से निम्न माने जाने के बावजूद इस समुदाय की एक विशिष्ट पेशागत पहचान थी।

बधतौ:

बधतौ जाति का उल्लेख मध्यकालीन स्रोतों में अस्पृश्य वर्ग के अंतर्गत मिलता है। अलबेरूनी के अनुसार, इनकी सामाजिक स्थिति अत्यंत निम्न थी तथा मृत पशुओं के मांस के सेवन के कारण इन्हें अत्यधिक अपवित्र माना जाता था।[27] इसके अतिरिक्त, कथासरित्सागर में 'बंधकों' शब्द का प्रयोग फाँसी देने वाले या जल्लाद के संदर्भ में किया गया है, जो इस प्रकार के समुदायों के पेशागत कार्यों की ओर संकेत करता है।[28]

हाड़ी:

हाड़ी जाति को अस्पृश्य वर्ग में रखा गया, किंतु चाण्डाल, डोम और बधतौ की तुलना में इनकी सामाजिक स्थिति अपेक्षाकृत उच्च थी, जिससे अस्पृश्य समुदाय के भीतर विद्यमान आंतरिक स्तरीकरण का संकेत मिलता है। अलबेरूनी के अनुसार, हाड़ी गाँव, नगर और कस्बों की सफाई जैसे कार्यों से संबद्ध नहीं थे।[29] यह तथ्य दर्शाता है कि पेशागत आधार पर भी अस्पृश्य जातियों के बीच भेद विद्यमान था।

श्वपाक:

श्वपाक (श्वपच) जाति का उल्लेख धर्मशास्त्रीय ग्रंथों में अस्पृश्य वर्ग के अंतर्गत मिलता है। मनु के अनुसार इसकी उत्पत्ति क्षत्रिय पुरुष और उग्र नारी के संयोग से हुई तथा इसे वर्णसंकर जाति माना गया है। [30] मनुस्मृति में श्वपच और चाण्डाल के कार्यों को समान बताया गया है, जबकि विष्णु स्मृति में भी इसे अस्पृश्य वर्ग में सम्मिलित किया गया है।[31] इन साक्ष्यों से यह स्पष्ट होता है कि श्वपाक जाति को अस्पृश्यता की कठोर श्रेणी में रखकर सामाजिक पदानुक्रम में अत्यंत निम्न स्थान प्रदान किया गया।

भिल्ल:

भिल्ल जाति का उल्लेख भी प्राचीन ग्रंथों में अन्त्यज अथवा अस्पृश्य वर्ग के अंतर्गत किया गया है। व्यास ने चर्मकार जाति के साथ इसका उल्लेख करते हुए भिल्लों को अत्यंत निम्न श्रेणी में स्थान दिया है, जिससे यह संकेत मिलता है कि इन्हें सामाजिक पदानुक्रम में हीन माना जाता था।[32] इसके अतिरिक्त, साहित्यिक स्रोतों में भिल्लों को ऐसी जाति के रूप में निरूपित किया गया है, जहाँ लक्ष्मी का निवास नहीं होता, जो उनकी आर्थिक एवं सामाजिक दीनता का प्रतीकात्मक चित्रण प्रस्तुत करता है।[33] इससे स्पष्ट होता है कि भिल्ल जाति को सामाजिक रूप से हीन समझा जाता था।

रजक (धोबी):

रजक (धोबी) जाति की सामाजिक स्थिति समय के साथ परिवर्तित हुई। वैदिक काल में इसे अस्पृश्य नहीं माना गया, किंतु उत्तरवर्ती काल में यह अन्त्यज वर्ग में सम्मिलित हो गई। इससे स्पष्ट होता है कि अस्पृश्यता की अवधारणा समयानुसार विकसित होकर विभिन्न पेशागत समूहों तक विस्तृत हुई। स्मृतियों में रजक को सात अस्पृश्य अन्त्यज जातियों में स्थान दिया गया है, जबकि याज्ञवल्क्य एवं विष्णु स्मृति में भी इसे निम्न पेशागत समूहों के साथ रखा गया है।[34] इससे स्पष्ट होता है कि रजक जाति की अस्पृश्यता मुख्यतः उसके पेशागत कार्यों तथा शुद्धता-अशुद्धता की अवधारणा से जुड़ी थी।

चर्मकार:

चर्मकार जाति का उल्लेख भी प्राचीन ग्रंथों में एक वर्णसंकर एवं अस्पृश्य वर्ग के रूप में किया गया है। परंपरागत मान्यताओं

के अनुसार इसकी उत्पत्ति निषाद पुरुष और वैदेह स्त्री के संयोग से मानी गई है, जो इसे मिश्रित वर्ण की श्रेणी में रखती है।[35] चमड़े से संबंधित कार्य इस समुदाय की प्रमुख पेशागत पहचान थी। कल्हण की राजतरंगिणी में भी चर्मकारों को अस्पृश्य जाति के रूप में वर्णित किया गया है। वर्तमान में यही समुदाय प्रायः 'मोची' के नाम से जाना जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि चर्मकारों की अस्पृश्यता का प्रमुख आधार उनका पेशा था।

निष्कर्ष:

प्रस्तुत अध्ययन से स्पष्ट होता है कि अस्पृश्यता की जड़ें प्राचीन भारतीय समाज में विद्यमान थीं, किंतु पूर्व मध्यकाल तक यह अधिक संगठित, व्यापक एवं कठोर सामाजिक व्यवस्था के रूप में विकसित हो चुकी थी। प्रारंभ में इसका आधार मुख्यतः पेशागत था, परंतु कालांतर में यह जन्माधारित एवं वंशानुगत व्यवस्था में परिवर्तित हो गई। परिणामस्वरूप सामाजिक गतिशीलता सीमित हुई तथा निम्न वर्गों का बहिष्कार स्थायी रूप ले गया। पूर्व मध्यकाल में चाण्डाल, डोम तथा अन्य अस्पृश्य जातियों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति अत्यंत दयनीय थी। ब्राह्मणीकरण, पेशागत विभाजन तथा शुद्धता-अशुद्धता की अवधारणा ने अस्पृश्यता के विस्तार और संस्थागत स्वरूप को सुदृढ़ किया। अतः स्पष्ट है कि अस्पृश्यता किसी एक कारण का परिणाम न होकर सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक प्रक्रियाओं के संयुक्त प्रभाव से विकसित हुई, जिसने पूर्व मध्यकालीन भारतीय समाज की जातिगत संरचना और सामाजिक असमानता को स्थायित्व प्रदान किया।

संदर्भ ग्रन्थ सूची:

1. ऋग्वेद, 10.90.2, "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः । ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥"
2. महाभारत, शांति पर्व , 118.5।
3. पतंजलि, महाभाष्य (अष्टाध्यायी), 2.4.10।
4. मिश्र, जयशंकर, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ. 99।
5. वही, पृ. 154।
6. जी. एस. घुर्ये, **कास्ट, क्लास एंड ऑक्युपेशन**, पृ. 214।
7. आर. सी. मजूमदार, **रेसेज एंड कल्चर्स ऑफ इंडिया**, पृ. 327।
8. निरूपण विद्यालंकार, **भारतीय धर्मशास्त्र में शूद्रों की स्थिति**, पृ. 285–287।
9. आर. फिक, **दि सोशल ऑर्गेनाइजेशन ऑफ नॉर्थ ईस्टर्न इंडिया इन बुद्धाज़ टाइम**, पृ. 324।
10. छान्दोग्य उपनिषद, 6.10.7।
11. बी. एन. पुरी, **इंडिया इन द टाइम ऑफ पतंजलि**, पृ. 91।
12. गौतम धर्मसूत्र, 4.15.23।
13. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 2.1.2.8–9, 'चाण्डालोस्पर्शने सम्भाषायां दर्शनं च दोषः, तत्र प्रायश्चित्तम्'।
14. गौतम धर्मसूत्र, 16.19।

15. जातक, 4.388।
16. अर्थशास्त्र, 3.7. "शूद्रधर्माणो वा अन्यत्र चण्डालेभ्यः।"
17. अत्रिस्मृति, 199, पृ. 18; यम, 33, पृ. 113।
18. मिश्र जयसंकर, पूर्वोक्त, पृ. 122-127।
19. मनु, 10.12।
20. मनुस्मृति, 10.50-66. "चाण्डालश्वपचानां तु बहिर्ग्रामात्प्रतिश्रयः। अपपात्राश्च कर्तव्या धनमेषां श्वगर्दभम् ॥"
21. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.93।
22. वाटर्स, पूर्वोक्त, पृ. 147।
23. कादम्बरी, पृ. 21, 25. "अमूर्तामिव स्पर्शवर्जिताम्, आलेख्यगतामिव दर्शनमात्रफलाम्।"
24. देशोनाममाला, 2.77; यशस्तिलक, पृ. 281. "चाण्डालशबरादिभिः आप्लुत्य दण्डवत् सम्यग्जपेन्मन्त्रमुपोषितः।"
25. सचाऊ, ई. सी., अलबरूनी का भारत, पृ. 125।
26. मिश्र जयशंकर, पूर्वोक्त, पृ. 126।
27. सचाऊ, ई. सी., पूर्वोक्त, पृ. 102।
28. सोमदेव, कथासरित्सागर, 2.5.97-110।
29. सचाऊ, ई. सी., पूर्वोक्त, पृ. 125।
30. मनु, 10.19. "क्षत्तुर्जातिस्तथोग्रायां श्वपाक इति कीर्त्यते।"
31. विष्णुस्मृति, 67.26।
32. व्यासस्मृति, 1.12-13।
33. ब्रह्माण्ड पुराण, 4.7.19।
34. विष्णुस्मृति, 1.1.13।
35. मिश्र जयशंकर, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ. 163।